प्रवचन-१७४, श्लोक-२५८, गाथा-१५०, सोमवार, ज्येष्ठ कृष्ण १०, दिनांक ०७-०७-१९८०

नियमसार १५० गाथा। कल आया था न? **संसारजनित प्रबल सुखदुःखरूपी अटवी से दूरवर्ती...** आहाहा! कर्म से नहीं लिया, आत्मा से - ऐसा नहीं लिया। पर्याय में संसार है, स्वरूप में संसार नहीं है, बाह्य में संसार नहीं है। पर्याय में संसार है - ऐसा सिद्ध किया। आहा! उस संसारजनित प्रबल सुख-दुःखरूपी वन, अर्थात् असंख्य प्रकार के सुख-दुःख के भाव, उनसे धर्मी दूरवर्ती है। बात की कि पर्याय में होते हैं - ऐसी बात की। कर्म से होते हैं या आत्मा में होते हैं - ऐसा नहीं लिया। आहाहा! आत्मा वस्तु भगवान पूर्णानन्द स्वरूप है। पर्याय में संसार से उतपन्न हुए, 'संसरण इति संसार', स्वभाव में से हटकर पर्याय में राग और द्वेष (भाव होवे), वह संसारजनित सुख-दुःख की अटवी... आहाहा! वह विकल्प का अनन्त जाल, ऐसे वन में... आहाहा! धर्मी दूरवर्ती वर्तता है। ऐसी बात है। आहाहा! जिसने, आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दघन अतीन्द्रिय आनन्द और वीतरागमूर्ति, ऐसा जिसने जाना—अनुभव किया, उसे उसकी पर्याय में संसार है, उस संसार से उत्पन्न हुआ विकल्प जाल, उससे भी रहित है। आहाहा! ऐसी बात है।

संसारजनित कहा। आत्मजनित भी नहीं कहा, कर्मजनित भी नहीं कहा। आहाहा! ऐसे आत्मा की पर्याय से उत्पन्न होता है—ऐसा भी नहीं कहा। आहाहा! क्या सन्तों की वाणी! गजब है! अजब बात! वह वस्तु स्वयं है। संसार की दशारहित स्वभाव है। जिसके स्वरूप में संसार, उसमें से हटना ऐसी वस्तु नहीं है, कहते हैं। आहाहा! उस चीज़ में से हटकर पर्याय में संसार है। उस संसार से उत्पन्न हुआ; उदयभाव से उत्पन्न हुआ - ऐसा भी नहीं कहा। आहाहा! गजब बात है। उदयभाव से होता है - ऐसा भी नहीं कहा; आत्मा की कमजोरी से होता है - ऐसा भी नहीं कहा; कर्म से होता है - ऐसा नहीं कहा। आहाहा! गजब बात की है। यह प्रभु संसाररहित है। चैतन्य भगवान में संसार है ही नहीं। उसकी पर्याय में संसार है, इसलिए संसारजनित शब्द लिया है। पर्यायजनित भी नहीं लिया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : पर्यायजनित नहीं, परन्तु विभावजनित...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है उसकी, उसका भी नहीं। वह संसारजनित उत्पन्न हुआ,

उससे दूरवर्ती है। अर्थात् उसमें वह स्वयं नहीं है, ऐसा। आहाहा! यह मुख्य बात है। ऐसी वाणी दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं है नहीं। आहाहा! बहुत गंभीर! बहुत गहराई! बहुत अन्दर अचिन्त्यता, आहाहा!

एक तो यह सिद्ध करना है कि वस्तुस्वरूप में संसार नहीं है, अर्थात् आत्मा विकार करे - ऐसा नहीं है। आहाहा! तथा कर्म से विकार होता है—ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! कमजोरी से विकार होता है—ऐसा न लेकर, वह संसार, पर्याय में संसार है। आहाहा! पुण्य और पाप का विकल्पजाल संसारजनित भाव सुख-दुःख, प्रबल सुख-दुःख। आहाहा! **प्रबल सुखदुःखरूपी अटवी से...** उसके वन से **दूरवर्ती होता है।** भगवान तो उससे दूरवर्ती है। आहाहा! गजब भाषा की है। ऐसी शैली कहीं नहीं है। संसार इसके स्वरूप में नहीं है—ऐसा कहना है और संसार, पर्याय है अर्थात् पर्याय से उत्पन्न होता है—ऐसा न कहकर... आहाहा! संसारजनित... आहाहा! प्रबल सुख-दुःखरूप (कहा)। आहाहा! कठोर सुख और दुःख के प्रकार। आहाहा!

मुमुक्षु : छठवें गुणस्थान में बुद्धिपूर्वक राग होता है, इसलिए यहाँ प्रबल शब्द प्रयोग किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तुस्वरूप में नहीं है; इसलिए प्रयोग किया। स्वरूप में यह है नहीं। आहाहा! यह संसारजनित, पर्याय में संसार है। पर्याय संसार है। धर्मी की पर्यायबुद्धि है नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो अन्तर की बातें हैं। आहाहा!

ऐसे जो **प्रबल सुखदुःखरूपी अटवी...** वन। उससे समकिती, ज्ञानी **दूरवर्ती होता है।** दूरवर्ती होता है। दूर वर्तता है, ऐसा कहते हैं। वर्तता तो है पर्याय में। आहाहा! परन्तु यह सुख-दुःख की कल्पना, इससे दूरवर्ती वर्तता है। दूरवर्ती वर्तता है। आहाहा! **इसलिए वह योगी अत्यंत आत्मनिष्ठ...** देखा! संसारजनित विकार की वृत्ति जहाँ अन्तर में है ही नहीं। इसलिए यह दृष्टि का विषय जो आत्मा है, उसमें वह निष्ठ है। आत्मनिष्ठ.... आत्मा में निष्ठ रहा हुआ **अन्तरात्मा है;...** वह अन्तरात्मा है। अन्तरात्मा का स्वरूप जो है, वह संसारजनित से भिन्न है। इससे भिन्न दूरवर्ती उसका वर्तन है। आहाहा!

यहाँ करोड़पति या धूलपति या अरबपति कुछ काम करे, ऐसा नहीं है। कि भाई, इतने करोड़ होवे तो दिक्कत नहीं। दान करे तो पाप हटे, पुण्य करे तो पाप हटे, ऐसा नहीं

कहते ? बालकों को-लड़कों को रोग होता है न ? बहुत होवे, फिर ऐसा कहे। पुण्य से पाप को धक्का लगता है, इसलिए पुण्य करो। लड़कों को कुछ बाँटो, बर्फी बाँटो, पेड़ा बाँटो, अमुक बाँटो। है या नहीं ? सुना है ? छोटे लड़के को। ऐसी स्थिति में होवे तो कहें पाप, पुण्य से हटेगा। करो पुण्य। आहाहा! यह अपने काठियावाड़ में तो कहावत है। यह तो सुना है न सब। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! यह पर्याय में संसार जो उत्पन्न हुई दशा, उसमें आत्मा निष्ठ नहीं है, उसमें आत्मा स्थित नहीं है। आहाहा! आत्मा तो उसे कहते हैं... आहाहा! कि आत्मनिष्ठ (होवे)। इस संसारजनित प्रबल सुख-दुःख से दूर वर्तता हुआ आत्मनिष्ठ (होवे)। वहाँ से दूर वर्तता है, परन्तु है कहाँ अब ? आहाहा! आत्मनिष्ठ। आत्मा में है। आहाहा! उसे यहाँ अन्तरात्मा कहा जाता है। आहाहा!

जो स्वात्मा से भ्रष्ट हो... इस प्रकार जो आत्मा में संसार नहीं है परन्तु उस संसार में जो हो... विशिष्टता तो यह की है कि संसार यह स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, धन्धा, यह कुछ संसार नहीं है। यह तो चीज़-परचीज़ है। परचीज़ में संसार कैसा ? संसार तो आत्मा की पर्याय में विकृतरूप है, तो पर्याय न लेकर इन्होंने संसार ही उठाया। संसार पर्याय में है। संकल्प और विकल्प का जाल। आहाहा! धर्मी उस पर्याय में संकल्प-विकल्प होने पर भी, दूरवर्ती वर्तता है अर्थात् आत्मा में वर्तता है, वह अन्तरात्मा है। आहाहा! देवचन्दजी! ऐसे देव की बात है यह। बड़ा देव अन्दर (विराजता है)। आहाहा!

गजब बात की है। लोगों को भाषा साधारण लगती है परन्तु बहुत गम्भीर। मुनि-सन्त दिगम्बर सन्त तो भगवान हैं, वे तो परमेश्वर हैं। पंच परमेष्ठी में परमेश्वर हैं। आहाहा! और वे पंच परमेष्ठी अरिहन्त तो मोक्ष जानेवाले हैं, सिद्ध मोक्ष हो गया परन्तु वह भी एकाध भव में मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! ये कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव (मोक्ष जानेवाले हैं)। हम तो यह संसारजनित, संसारजनित... आहाहा! गजब बात है। इसमें हम नहीं। हम संसार में नहीं। बाहर स्त्री, पुत्र छोड़े; इसलिए हम संसार में नहीं - ऐसा नहीं। करोड़ों का व्यापार-धन्धा करता था, वह छोड़ा तो उसने संसार छोड़ा, ऐसा नहीं है। पर्याय में संसारजनित जो विकल्प होता है, उससे दूर वर्ते, उसने संसार छोड़ा। आहाहा! कहो, समझ में आया ?

यह गाथा ऊपर तो कल आ गया था। विशेष (लिया)। आहाहा! और ऐसे स्व-आत्मा से भ्रष्ट है, अर्थात् संसारजनित भाव में जो पड़ा है और उससे रहित भगवान परमात्मा है, विद्यमान चीज़ है, प्रत्यक्ष है, प्रगट है... आहाहा! मौजूद है। आहाहा! पर्याय में भी जिसकी अस्तित्व नहीं, ऐसा उसका अस्तित्व महाअस्तित्व प्रभु का, ध्रुव अस्तित्व विराजमान है। उसमें निष्ठ, जो स्थिर है, वह आत्मा है, बाकी भ्रष्ट है। आहाहा! एक आत्मा में से निकलकर जो संसारजनित संकल्प-विकल्प, उनमें जो रुकता है, वह आत्मा से भ्रष्ट है। है?

जो स्वात्मा से भ्रष्ट हो, वह बहिःतत्त्व... आहाहा! बाह्यतत्त्व। आहाहा! अन्तरतत्त्व में संसार ही नहीं है। संसार बहिःतत्त्व है। धर्मी को बहिःतत्त्व पर दृष्टि नहीं है, इसलिए उससे दूरवर्ती है। आहाहा! और अज्ञानी संसार की जो वृत्ति है, उसमें रुका हुआ है, वहाँ पर्यायबुद्धि में रुका है। आहाहा! इसीलिए वह स्वात्मा से, वस्तु के स्वभाव से भ्रष्ट है। आहाहा! नीचे विशेष लेंगे। बाह्यतत्त्व में बहिरात्मा है। आहाहा!

जो अन्तर भगवान अनादि-अनन्त, अनन्त गुण की ध्रुवधारा, उसमें से हटकर उस संसारजनित राग में जो खड़ा है, वह स्वात्मा से भ्रष्ट है। ऐसी बात है। आहाहा! गजब बात है। ओहोहो! ऐसी भाषा-वाणी कहाँ है? दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त (कहीं नहीं है)। यह अन्तर के अनुभव के उद्गार हैं, हों! सब। आहाहा! यह प्रभु स्वयं संसार से तो दूरवर्ती वर्तता है। वहाँ हमारी दृष्टि है। जहाँ संसार नहीं, वहाँ हम हैं। आहाहा! जहाँ संसार है, वहाँ जो है, वह स्वात्मा से भ्रष्ट है। आहाहा! कहो, विमलचन्दजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

गाथा-१५०

अंतरबाहिरजप्पे जो वट्टइ सो हवेइ बहिरप्पा।
जप्पेसु जो ण वट्टइ सो उच्चइ अंतरंगप्पा।।१५०।।

अन्तरबाह्यजल्पे यो वर्तते स भवति बहिरात्मा।
जल्पेषु यो न वर्तते स उच्यतेऽन्तरङ्गात्मा।।१५०।।

बाह्याभ्यन्तरजल्पनिरासोऽयम्। यस्तु जिनलिङ्गधारी तपोधनाभासः पुण्यकर्मकाङ्क्षया स्वाध्यायप्रत्याख्यानस्तवनादिबहिर्जल्पं करोति, अशनशयनयानस्थानादिषु सत्कारादिलाभ-लोभस्सन्नन्तर्जल्पे मनश्चकारेति स बहिरात्मा जीव इति। स्वात्मध्यानपरायणस्सन् निरवशेषेणान्तर्मुखः प्रशस्ताप्रशस्तसमस्तविकल्पजालकेषु कदाचिदपि न वर्तते अत एव परमतपोधनः साक्षादन्तरात्मेति।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिः ह्न

(वसंततिलका)

स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजाला-
मेवं व्यतीत्य महतीं नय-पक्ष-कक्षाम्।
अन्तर्बहिः सम-रसैक-रस-स्वभावं,
स्वं भाव-मेक-मुपयात्यनुभूति-मात्रम्।।

तथाहि ह्न

जो बाह्य-अन्तर जल्प में वर्ते वही बहिरातमा।
जो जल्प में वर्ते नहिं वह जीव अन्तरआतमा॥१५०॥

अन्वयार्थ : [यः] जो [अन्तरबाह्यजल्पे] अन्तर्बाह्य जल्प में [वर्तते] वर्तता है, [सः] वह [बहिरात्मा] बहिरात्मा [भवति] है; [यः] जो [जल्पेषु] जल्पों में [न वर्तते] नहीं वर्तता, [सः] वह [अन्तरंगात्मा] अन्तरात्मा [उच्यते] कहलाता है।

टीका : यह बाह्य तथा अन्तर जल्प का निरास (निराकरण, खण्डन) है।

जो जिनलिंगधारी तपोधनाभास पुण्यकर्म की काँक्षा से स्वाध्याय, प्रत्याख्यान, स्तवन आदि बहिर्जल्प करता है और अशन, शयन, गमन, स्थिति आदि में (-खाना, सोना, गमन करना, स्थिर रहना इत्यादि कार्यों में) सत्कारादि की प्राप्ति का लोभी वर्तता हुआ अन्तर्जल्प में मन को लगाता है, वह बहिरात्मा जीव है। निज आत्मा के ध्यान में परायण वर्तता हुआ निरवशेषरूप से (सम्पूर्णरूप से) अन्तर्मुख रहकर (परम तपोधन) प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त विकल्पजालों में कभी भी नहीं वर्तता, इसीलिए परम तपोधन साक्षात् अन्तरात्मा है।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ९०वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(वीरछन्द)

इस प्रकार जिसमें उठते हैं अपने आप अनेक विकल्प।
इस विशाल नयपक्ष भूमिका का जो करते हैं उल्लंघ॥
भीतर बाहर समतारसमय यही एक रस जिनका भाव।
प्राप्त करें अनुभूति मात्र बस एकरूप अपना निजभाव॥

[श्लोकार्थः] इस प्रकार जिसमें बहु विकल्पों के जाल अपने आप उठते हैं, ऐसी विशाल नयपक्ष कक्षा को (नयपक्ष की भूमि को) लाँघकर (तत्त्ववेदी) भीतर और बाहर समतारसरूपी एक रस ही जिसका स्वभाव है, ऐसे अनुभूतिमात्र एक अपने भाव को (स्वरूप को) प्राप्त होता है।

गाथा - १५० पर प्रवचन

अब १५० (गाथा)

अंतरबाहिरजप्पे जो वट्टइ सो हवेइ बहिरप्पा।
जप्पेसु जो ण वट्टइ सो उच्चइ अंतरंगप्पा।।१५०।।

जो बाह्य अन्तर जल्प में वर्ते वही बहिरातमा।
जो जल्प में वर्ते नहिं वह जीव अंतरआतमा॥१५०॥

आहाहा! गाथा बहुत ऊँची है। मक्खन है, मक्खन।

टीका : यह बाह्य तथा अन्तर जल्प का निरास (निराकरण, खण्डन) है। आहाहा! बाह्य के लक्ष्य से होनेवाले विकल्प और अन्तर की भूल से होनेवाले विकल्प, उन रहित की इसमें बात है। आत्मा में विकल्प की गन्ध नहीं। बाह्य और अन्तर्जल्प का निराकरण-खण्ड है। आहाहा! **जो जिनलिंगधारी...** आहाहा! कहते हैं कि संसारजनित रागभाव, विकल्पभाव से दूर नहीं वर्तता वह तो, दूर वर्ते वह तो आत्मा है। उसमें जो वर्तता है, वह **जिनलिंगधारी तपोधनाभास...** मुनियाभास, मुनिभास। मुनिपना है नहीं। आहाहा! यह साहूकार कहते हैं न? साहूकाराभास। पैसा न हो और साहूकार कहलावे। उसी प्रकार यह तपोधानाभास। मुनिपना नहीं और मुनिपना मानता है। आहाहा!

वह **तपोधनाभास पुण्यकर्म की काँक्षा से...** आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। उसमें दृष्टि पड़ी नहीं, उसका स्वीकार और सत्कार, आदर नहीं, वह पुण्यकर्म की काँक्षा से, वह तो पुण्यकर्म की इच्छा से **स्वाध्याय,...** करता है। आहाहा! शास्त्र वांचन करे, पढ़े, स्वाध्याय के बोल हैं न? वांचन, पर्यटन, कहना इत्यादि। पर्यटन, धर्मकथा... आहाहा! धर्मकथा, वह भी संसार है। अर.र.र..! वह स्वरूप में नहीं है। भगवान आत्मा स्वरूप चैतन्यमूर्ति में वह नहीं है, इसलिए जिनलिंगधारी... अन्य की तो बात भी क्या करना? कहते हैं। यहाँ तो जिनलिंगधारी-नग्नलिंगधारी... आहा! **तपोधनाभास...** तप का-तपोभास। मानो मुनि है, ऐसा मनावे और माने, बाहर नग्नदशा में। आहाहा!!

पुण्यकर्म की काँक्षा से... जब अन्तरस्वरूप संसार के परिणाम से रहित है, ऐसी दृष्टि अन्तर अनुभव हुआ नहीं, इसलिए वह उससे विरुद्ध ऐसा पुण्य। है साधु को? इसलिए पुण्य लिया है। गृहस्थाश्रम और पाप, वह अभी नहीं लेना। मुनि है, अट्ठाईस मूलगुण पालन करता है, पंच महाव्रत पालता है, हजारों रानियाँ छोड़ी हैं, करोड़ों की आमदनी और दुकान छोड़ी है। आहाहा! यह लिया है, ऐसा जो **जिनलिंगधारी तपोधनाभास पुण्यकर्म की काँक्षा से...** गहराई में वह आत्मनिष्ठ नहीं है। वह संसारजनित राग में निष्ठ है, इसलिए उसे पुण्यकर्म की काँक्षा है। आहाहा! उसे तो पुण्य के बन्ध की ही इच्छा है। पुण्य की इच्छा है, कहो या फिर पुण्यबन्ध की इच्छा कहो।

जिसे पुण्य की इच्छा है, शुभ-अशुभ विकल्प जो उठे, उनकी जिसे इच्छा है, वह

स्वयं ही पुण्यकर्म की वाँछावाला है। पुण्यकर्म की वाँछावाला है। आहाहा! वह स्वाध्याय पुण्य के, शुभराग के प्रेम से स्वाध्याय करता है। आहाहा! शुभराग की रुचि से स्वाध्याय करता है, इसलिए वह पुण्य का काँक्षी, पुण्य का काँक्षी, पुण्य की वाँछावाला कहा है। भगवान आत्मा वह विकल्परहित दूरवर्ती है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! प्रभु! पर्याय में संसार है, वह तू नहीं, तुझमें नहीं, वह तुझे स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसी दशा में जो नहीं, तब उसे पुण्य की काँक्षा है। यहाँ ऐसा नहीं, उसे पुण्य की काँक्षा (है ही)। अन्तर सन्मुख झुकाव नहीं, इसलिए बहिर् के झुकाव की पुण्य की इच्छा है ही। आहाहा! समझ में आया?

स्वाध्याय,... करे, शास्त्र पढ़े, लाखों-करोड़ों श्लोक कण्ठस्थ करे, स्वाध्याय करे। आहाहा! हमारे सम्प्रदाय उस समय में रात्रि चर्चा का नहीं था। स्वाध्याय करते थे। हजार, बारह सौ, पन्द्रह सौ श्लोक दो घण्टे, ढाई घण्टे चले। श्लोक की सज्झाय करते। तीनों व्यक्ति। मुझे तो कण्ठस्थ था, मेरे गुरु हीराजी (महाराज) को कण्ठस्थ था। मूलचन्दजी बड़े थे, उन्हें भी कण्ठस्थ था। दो-दो घण्टे तक रात्रि के, सवा सात-साढ़े सात से साढ़े नौ (बजे तक) स्वाध्याय करें। ऐसा कि यह स्वाध्याय है, इसमें अपना धर्म है। आहाहा!

प्रत्याख्यान,... करता है। ले, बेचारा प्रत्याख्यान करे तो भी कहते हैं कि भ्रष्ट है। स्वरूप की अस्तित्वता की दृष्टि नहीं। संसार से उत्पन्न हुआ विकृत भाव, उससे भिन्न पर दृष्टि नहीं है, उसका आदर नहीं है, अनुभव नहीं है, उसका जिसे अन्तर्वेदन नहीं है... आहाहा! वह प्रत्याख्यान भी भ्रष्ट है। वह प्रत्याख्यान करता है, तो भी भ्रष्ट है। व्यवहार प्रत्याख्यान विकल्प है। आहाहा! भगवान का **स्तवन...** करता है। लाखों स्तुति करे। आहाहा! आता है न कहीं? लाखों स्तुति। आहाहा! समयसार में आता है, नहीं? इसमें ही आता है। लाखों स्तुति करे, लाखों स्तुति। ओहोहो! तथापि वह स्तुति है, वह तो वाणी है और उस ओर के लक्ष्य का भाव, वह राग है। वह आत्मा से दूरवर्ती है। आहाहा!

धर्मी संसार से दूरवर्ती है, जबकि अज्ञानी आत्मा के स्वभाव से दूरवर्ती है। आहाहा! भले वह स्वाध्याय करे, भगवान की स्तुति करे, भगवान के सामने बैठकर दो-दो घण्टे, तीन-तीन घण्टे स्तुति करे। भगवान तुम ऐसे और भगवान तुम ऐसे। परन्तु तू भगवान ऐसा कौन है, उसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है। आहाहा! ओहोहो!

स्तवन आदि... स्तुति, वन्दना आदि चाहे जो करे। आहाहा! उठ-बैठ करके गुरु को वन्दन करे, आदि (करे) परन्तु तपोभ्रष्ट ही है। आहाहा! अन्तर जो चैतन्यस्वरूप भगवान, उससे भ्रष्ट है, वह इस विकल्प में वर्तता है। पाठ ऐसा है न? कि विकल्प में कौन वर्तता है? **अंतरबाहिरजप्पे जो वट्टइ सो हवेइ बहिरप्पा।** है पाठ? अन्तर में और बाह्य में जो जल्प अर्थात् विकल्प में वर्तता है, वह बहिरात्मा है। आहाहा! है न मूल? अन्तर और बाह्य दोनों जल्प अर्थात् विकल्प है। **जो वट्टइ** जो वर्तता है। **सो हवेइ बहिरप्पा,** वह बहिरात्मा है। आहाहा! नग्नमुनि नागा बादशाह से आघा। जगत की कुछ पड़ी नहीं। जगत को यह जँचेगा या नहीं? जगत मशकरी करेगा? जगत, जगत में है। हमारे और उसके कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, ऐसे जो **बहिर्जल्प करता है...** आहाहा! स्वाध्याय, स्तवन आदि स्तुति के विकल्प करता है, वह संसार में ही बसता है। आहाहा! यहाँ दुनिया स्त्री, पुत्र छोड़े, दुकान छोड़े तो यह त्यागी है और मुनि है, (ऐसा कहती है)। आहाहा! परमात्मा तो ऐसा कहते हैं, जो पर्याय में संसारजनित विकार है, वह त्रिकाली निर्विकारी परमात्मा से विरुद्ध है। इसलिए एक ओर मोक्ष है तथा एक ओर संसार है। प्रभु है, वह तो मुक्तस्वरूप है। आहाहा! वह राग से बँधा हुआ नहीं, राग में अटका हुआ नहीं, वह तो मुक्तस्वरूप है, त्रिकाल निरावरण है, अखण्ड है, एक है, प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है। आहाहा! उसे छोड़कर जो इस विकल्प में बसता है, (वह बहिरात्मा है)। आहाहा!

और अशन,... आहार। आहार का त्याग करे तो गहराई में दूसरे मुझे तपस्वी माने, ऐसी मिठास का वेदन करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **अशन, शयन,...** सोने में भी थोड़ा सोवे। **गमन,...** गमन करने में भी अन्दर आशा-अभिलाषा है। अन्दर के स्वरूप की खबर नहीं है, इसलिए उसकी ऐसी आशा नहीं जाती। आहाहा! **अशन, शयन, गमन, स्थिति...** भले एक जगह बैठे, तो भी अन्दर आशा स्वभाव सन्मुख की नहीं है, इसलिए वह विकल्प में ही वर्तता है। आहाहा! भले वह जंगल में, वन में अकेला वृक्ष के नीचे अकेला बैठा हो। कोई व्यक्ति न हो। आहाहा! परन्तु अन्तर भगवान आत्मा में नहीं वर्तता,

वह संसारजनित विकार में ही वर्तता है। आहाहा!

स्थिति आदि में (-खाना, सोना, गमन करना, स्थिर रहना इत्यादि कार्यों में) सत्कारादि की प्राप्ति का लोभी... आहाहा! अन्तर का लोभी नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ का स्वीकार जहाँ नहीं, वहाँ उससे उल्टा विकार होता है, उसका वह लोभी है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। वह विहार करे, ऐसे देखकर परन्तु गहराई में मिठास (वेदन करता है कि) दूसरे ऐसा जाने कि यह तो भारी ईर्या-देखकर काम करता है। ईर्यासमिति से करता है, ऐसे मिठास अन्दर भाव की-पुण्य की है। आहाहा!

सत्कारादि की प्राप्ति का लोभी वर्तता हुआ... आहाहा! उसकी पर्याय में उसे सत्कार, सम्मान, मान चाहिए, महिमा चाहिए। यहाँ भगवान की महिमा है, वह महिमा छोड़ दी। आहाहा! और बाहर में प्रसिद्ध होना, बाहर में हिलना-चलना, गमन, लिखने की क्रिया में, शास्त्र बनाने में, सबमें पुण्य की काँछा है। आहाहा! और लोग मुझे कैसे त्यागी मानें, आहाहा! ऐसी बात है। धर्मकथा करने पर भी धर्मकथा इसे आती है, ऐसा जो लोभ स्वयं करे तो वह बहिरात्मा है। आहाहा! गजब बात है। इत्यादि है न!

स्थिति आदि में... आया न? **अशन, शयन, गमन, स्थिति आदि में...** दूसरे कोई भी बोल में, हिलना, चलना, लिखने में, बोलने में, लिखने में, धर्मकथा कहने में... आहाहा! शुभकार्य के किसी भी कार्य में इसकी अन्दर वाँछा नहीं जाती। उसे वाँछा की ही प्राप्ति होती है। उसे पुण्य की ही वाँछा होती है क्योंकि भगवान को देखा नहीं, इसलिए उससे विरुद्ध में भी उसका प्रेम और वाँछा वर्तती है। आहाहा! सत्कार आदि। सत्कार, महिमा, मुझे आता है—ऐसा जिसे गहराई में प्रेम है... आहाहा! वह जिनलिंगधारी तपोभास है। आहाहा! भले हजारों रानियाँ छोड़कर बैठा हो, अरबों की आमदनी छोड़कर दुकान और राज छोड़ा हो। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द के नाथ की जिसे अन्दर में मिठास नहीं आयी, उसे यह पर की मिठास हटती नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे पर का सत्कार, सम्मान की वाँछा टलती नहीं। आहाहा! सत्कार आदि शब्द है न? मान दे, कोई महिमा दे। आहाहा! कोई पदवी दे कि ऐसा मैं कुछ करूँ तो पदवी मिले।

मुमुक्षु : अच्छा आवास दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आवास। यह तो महापुरुष है, भाई! अच्छी जगह उतारो। साधारण में नहीं। तो उसे ऐसा लगता है कि... आहा! मेरी महिमा का उसे भरोसा है। उस प्रमाण गहराई में स्वयं राग का काँक्षी है। आहाहा!

सत्कारादि की... आदि शब्द है न? आहाहा! **प्राप्ति का लोभी वर्तता हुआ...** यह इस ओर में भगवान को देखा नहीं, इसलिए संसार का लोभी है। आहाहा! इस ओर भगवान को देखा नहीं, इसलिए उसका प्रेम नहीं, उसकी ओर उन्मुखता और झुकाव नहीं। इस ओर राग में उसका झुकाव है। आहाहा! ऐसा लोभी वर्तता हुआ। **अन्तर्जल्प में...** अन्तर के विकल्प में **मन को लगाता है,...** आहाहा! अन्तर विकल्प में मन को जोड़ता है। **वह बहिरात्मा जीव है।** आहाहा!

निज आत्मा के ध्यान में परायण वर्तता हुआ... आहाहा! अब सुलटे की बात है। **निज आत्मा के ध्यान में परायण वर्तता हुआ निरवशेषरूप से (सम्पूर्णरूप से) अन्तर्मुख रहकर...** आहाहा! निरवशेष अर्थात्? कोई भी-धर्म के नाम का भी विकल्प... आहाहा! सर्व विकल्पों को छोड़कर। **निज आत्मा के ध्यान में परायण...** परायण। इस ध्यान में तत्पर वर्तता हुआ। आहाहा! **निरवशेषरूप से (सम्पूर्णरूप से)...** अवशेष-बाकी रखे बिना। सम्पूर्ण रूप से **अन्तर्मुख रहकर...** अन्तर्मुख ज्ञानानन्दस्वभाव की ओर रहकर **(परम तपोधन) प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त विकल्प जालों में कभी भी नहीं वर्तता...** आहाहा! ऐसा मार्ग, ऐसा मुनिपना!

यह तो वस्त्र छोड़कर नग्न हो (तो) हो गया, लो! आहाहा! कल चन्दुभाई कहते थे। वह विद्यासागर है न? वे ऐसा कहते हैं न कि अमृतचन्द्राचार्य काष्ठासंघी है। क्यों? - कि काष्ठासंघी स्त्री को मुक्ति मानते हैं और यहाँ उन्होंने जयसेनाचार्य की टीका में स्त्री का वर्णन बहुत आता है कि स्त्री मुक्ति में नहीं जाती, ऐसे श्लोक आते हैं। अमृतचन्द्राचार्य ने वे श्लोक डाले नहीं, इसलिए वे स्त्री की मुक्ति माननेवाले काष्ठासंघी हैं। आहाहा! फिर कहते हैं कि कैलाशचन्दजी ने बहुत झाड़ा। अमृतचन्द्राचार्य को तुम दूसरे प्रकार से काष्ठासंघी ठहराते हो? बाहर की स्त्री को मुक्ति नहीं होती, यह बात तुमको जँचती नहीं, उसके लिये तुम उन्हें काष्ठासंघी ठहराते हो? परन्तु स्त्री का स्पष्टीकरण उन्होंने बाहर में किया नहीं किन्तु यह अष्टपाहुड़ में तो आता है, नहीं? कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं कि

अरे! स्त्री और पशु को मोक्ष कब देखा? आता है न? आहाहा! स्त्री को, पशु को -जानवर को मोक्ष कभी देखा? स्त्री को मोक्ष नहीं होता। स्त्री को मोक्ष माननेवाले मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! भगवान की माता को हाथी के हौदे केवलज्ञान हुआ...

मुमुक्षु : भगवान की माता का कौन निषेध करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़े का कौन निषेध करे? हाथी के हौदे दर्शन करने गयी थी, वहाँ भगवान (को देखकर)... आहाहा! हाथी के ऊपर केवलज्ञान हो गया। अरे! स्त्री को केवलज्ञान हाथी के ऊपर! ऐसा श्वेताम्बर में आता है। आहाहा! काम बहुत कठिन है। यह तो वस्तु की (स्थिति है)। व्यक्तिगत (बात नहीं है), जिसे जो मान्यता है, उसका फल उसे भोगना है। अरे रे! कोई प्राणी दुःख को भोगे और दुःखी हो, धर्मी को ऐसी भावना नहीं होती। आहाहा! वह भगवान है, प्रभु! वह दुःखी हो, (ऐसा धर्मी को नहीं होता)। अरे! देखो न! आहाहा! आज बहिन ने बात की न? राजकुमार है। बीस करोड़ रुपये हाथ में से गिर गये। चक्कर आता होगा और सातवीं बार असाध्य हो गया। आहाहा! वहाँ पैसा क्या करे? बीस करोड़ रुपये और इज्जत बड़ी। दूसरे सबमें आया था। फूलचन्दभाई झाँझरी। वहाँ देखने गये थे। समाचार सुने थे। आहाहा! वह पैसे के ठिकाने पैसे (रहे), असाध्य होकर कितने दिन रहा! आहाहा!

भगवान! यह रागादि विकल्प को अपना मानता है, वह असाध्य है। आहाहा! उसे साध्य नहीं है। चैतन्य भगवान परमात्मस्वरूप अमृत का सागर, जिसमें अमृत का गंज पड़ा है। आहाहा! अमृत का पर्वत प्रभु, अमृत का पर्वत प्रभु, जिसमें से अमृत झरे, उसे छोड़कर जो राग में... आहाहा! यहाँ तो बाहर में वर्तता है, ऐसा नहीं कहा। बाहर की बात में विकल्प में वर्ते। यह पाठ है न? **अंतरबाहिरजप्पे जो वट्टइ** अन्तर और बाह्य प्रकार के विकल्प में वर्तता है। आहाहा! बाह्य में वर्त नहीं सकता। आत्मा बाह्य का वर्तन तो कुछ कर नहीं सकता। हिलना, चलना, बोलना (कर नहीं सकता)। जो अज्ञानभाव से कर सकता है, वह बात ली है। आहाहा! **अंतरबाहिरजप्पे जो वट्टइ** ऐसा कहा है। अन्तर-बाहर की-जड़ की, पर की क्रिया में वर्तता है, ऐसा नहीं कहा। आहाहा!

यह कुन्दकुन्दाचार्य के वचन हैं। आहाहा! अन्तर में और बाह्य में जो विकल्प है, बाह्यनिमित्त, हिलना-चलना-बोलना-लिखना, वह निमित्त, उसका जो विकल्प और

अन्तर का मान-सम्मान का विकल्प, परन्तु उस विकल्प की बात की, विकल्प में वर्तता है, ऐसा कहा; बाहर की चीज़ में वर्तता है, ऐसा नहीं। आहाहा! है न?

अंतरबाहिरजप्पे जो वट्टइ सो हवेइ बहिरप्पा।
जप्पेसु जो ण वट्टइ सो उच्चइ अंतरंगप्पा।।

बाहर का त्याग करे तो अन्तरात्मा है, ऐसा नहीं कहा। **जप्पेसु जो ण वट्टइ** विकल्प के जाल में नहीं वर्तता, वह अन्तरात्मा है। आहाहा! कठिन पड़े न! गाथा है न ऐसी, देखो न! गाथा बोलती है न?

बाहर और अन्तर्जल्प / विकल्प में वर्तता है, वह बहिरात्मा; और **जप्पेसु जो ण वट्टइ** ऐसा कहा है। पर की क्रिया छोड़ देता है और अकेला बैठता है, ऐसा नहीं। अन्दर के विकल्प को जो न छोड़े, वह मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। अन्तर के विकल्प को छोड़े, वह अन्तरात्मा है। आहाहा! ऐसा धर्म कैसा? कहाँ का धर्म होगा यह? बापू! वीतराग जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ अनन्त तीर्थंकरों के श्रीमुख से निकली हुई यह वाणी है। अनन्त तीर्थंकरों का यह कथन है। स्वयं मुनि भगवान है। आहाहा! पंच परमेष्ठी है न? आहाहा! वहाँ तो पहले कहा नहीं था? - कि केवली में और वीतरागी मुनि में अन्तर मानते हैं, इसलिए हम जड़ हैं। ऐसा नहीं आया था? आया था न? आहाहा! पृष्ठ कितना?

मुमुक्षु : २९६ पृष्ठ।

पूज्य गुरुदेवश्री : २९६, हाँ! यहाँ है न? **सर्वज्ञ-वीतराग में और इस स्ववश योगी में कभी कुछ भी भेद नहीं है; तथापि अरे रे! हम जड़ हैं...** ऐसा मुनिराज कहते हैं। आहाहा! जरा विकल्प उठा है न? आहाहा! अरे रे! नग्न मुनि दिगम्बर और अन्तरध्यान में मस्त हैं। उन्हें ऐसा कहते हैं कि भगवान में और उनमें अन्तर माने तो वह जड़ है। आहाहा! अन्तर जरा सा है, ऐसा पहले श्लोक आ गया है। इसके पहले श्लोक आ गया है। थोड़ा अन्तर है। यहाँ निकाल डाला। आहाहा! क्योंकि वह अन्तर है, वह मिटकर वीतराग हो जानेवाले ही हैं। ये भगवान हो जानेवाले हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, योगीन्द्रदेव, पद्मप्रभमलधारिदेव... आहाहा! सब मोक्ष जानेवाले हैं। वर्तमान में स्वर्ग में हैं। वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! भगवान है। एक भव बाकी, पंचम काल में जन्मे, पंचम काल में जन्म हो गया। आहाहा! भगवान का जहाँ

विरह पड़ा, इससे एकाध भव रह गया। आहाहा! उसके कारण एकाध भव (रह गया), नहीं तो इसी भव में मोक्ष जाए। महाविदेह में तो उसी भव में अरबोंपति राजा राजपना छोड़कर, विकल्प छोड़कर निर्विकल्प में मस्त होकर केवलज्ञान उत्पन्न करके मोक्ष जाते हैं। क्योंकि छह महीने आठ समय में छह सौ आठ (जीव) तो मोक्ष जाते हैं... जाता नहीं। मोक्ष जाए वहाँ है। आहाहा!

भगवान के पास... आहाहा! ऐसे मुनि हैं कि जो छह महीने आठ समय में छह सौ आठ मुक्ति जाते ही हैं। आहाहा! समय अधिक है। छह सौ आठ जीव हैं और वे छह महीने आठ समय है। समय अधिक है। जीवों की संख्या की अपेक्षा समय की संख्या अधिक है। छह महीने आठ समय है न? उसमें छह सौ आठ जाते हैं न? तो छह महीने में तो असंख्य समय होते हैं और यहाँ तो छह सौ आठ हुए। आहाहा! परन्तु वह अनादि की यह स्थिति है। आहाहा! छह सौ आठ, आहाहा! जैसे छह सौ आठ मुक्ति जाएँ, वैसे छह सौ आठ (नित्य) निगोद में से निकलते हैं। आहाहा! बाकी तो पड़े रहते हैं। इस शरीर के अनन्तवें भाग निकलते हैं। चाहे जब निकलेंगे तो भी एक शरीर के अनन्तवें भाग ही बाहर निकलेंगे। आहाहा!

ऐसा क्या मिला? वीतराग की वाणी मिली। आहाहा! ऐसा योग तो बड़े-बड़े पुण्य के ढ़ेर, पुण्य का बड़ा मेरुपर्वत उछला है अभी। उसमें ऐसा योग है, कहते हैं। अब करना तो तुझे है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। जो उसमें विकल्प को जोड़ता नहीं। प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों, हों! शुभराग और अशुभराग... आहाहा! इन दोनों में **समस्त विकल्प जालों में कभी भी नहीं वर्तता...** आहाहा! **इसीलिए परम तपोधन...** यह तप की व्याख्या। यहाँ अपवास की नहीं है। आत्मा के समीप में वर्तता है, वह तपोधन है, उपवासी है। आहाहा! **समस्त विकल्प जालों में कभी भी नहीं वर्तता, इसीलिए परम तपोधन साक्षात् अन्तरात्मा है।** आहाहा! एक गाथा में बहिरात्मा और अन्तरात्मा की व्याख्या की।

प्रभु में विकल्प की गन्ध नहीं है। निर्विकल्प का पिण्ड है। आहाहा! जैसे सोने की बड़ी पाँच-पच्चीस मण की ईंट हो, उसमें जंग की गन्ध नहीं है; इसी प्रकार अनन्त गुण का पिण्ड है... आहाहा! उसमें राग के विकल्प की शुभराग के विकल्प की भी गन्ध नहीं

है। आहाहा! ऐसा भगवान विद्यमान शक्ति से विराजमान पड़ा है। उसे तू विकल्प में वर्त कर अविद्यमान कर डालेगा। आहाहा! विकल्प में वर्त कर अविद्यमान कर डालता है और धर्मी निर्विकल्प में वर्तता हुआ विकल्प को अविद्यमान कर डालता है। आहाहा! विद्यमान को अविद्यमान करे और अविद्यमान को विद्यमान करे। आहाहा!

सत् है। इसलिए वास्तव में तो उसकी परिणति सती है। सत् की परिणति सती होती है। आहाहा! संकल्प-विकल्प उसकी परिणति नहीं होती। वह सत् प्रभु है, वह सती है। उसकी परिणति सती है अर्थात् कि इसका कोई मालिक नहीं है। आहाहा! स्वयं ही अपना अनुभवी मालिक है। आहाहा! जो जीव अन्तरात्मा है। अल्प काल में वह केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष जानेवाला ही है। आहाहा!

किसी समय कथन आवे कि यह (समकिती) गिर जाता है। यह समझाया है। आहाहा! ३८ गाथा में तो यहाँ तक कहा है कि जो कोई अप्रतिबुद्ध शिष्य था, गुरु ने बारम्बार समझाया, समझकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हुआ। ३८ गाथा में है। अप्रतिबुद्ध था, उसे गुरु ने बारम्बार समझाया। अर्थात् उसने बारम्बार मनन किया। आहाहा! वह जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान को प्राप्त हुआ। उसे फिर से मिथ्यात्व उदय हो, ऐसा है नहीं। ३८ गाथा में ऐसा पाठ है। आहाहा! भगवान है। आहाहा! उसे काल और विकल्प बाधक है कहाँ? विद्यमान ऋद्धि से भगवान स्थित है। उसकी ऋद्धि का पार नहीं होता। आहाहा! उसमें वह विकल्प को गिने किसप्रकार? आहाहा! समयसार ३८ गाथा। अप्रतिबुद्ध था, उसे गुरु ने बारम्बार समझाया और प्रतिबोध पाया। पाया भी अप्रतिहत! पाया वह पाया, वह गिरनेवाला नहीं है - ऐसा पाठ है। अब हमें मिथ्यात्व का अंकुर उत्पन्न होनेवाला नहीं है, ऐसा पाठ है। ३८ गाथा। पंचम काल का समकिती भगवान के विरह में रहा हुआ, भगवान का विरह है, तो भी कहता है कि हमें अन्तर का विरह नहीं है। आहाहा! परमानन्द का नाथ हमारे पास विराजता है। इसलिए हम परमात्मा हैं और परमात्मा होनेवाले हैं। ऐसा कथन आता है। हो गया समय?

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)